गंगा मैया
भाग 5

भैरव प्रसाद गुप्त

गंगा मैया
भाग 5

तेरह

कितने ही मेहमान आ-आकर जब निराश हो-होकर लौट गये, तो एक दिन, जब भाभी अपनी पूजा में तल्लीन थी, माँ ने गोपी को बुलाया और पिता के सामने ला खड़ा किया। पिता की मुख-मुद्रा अत्यधिक गम्भीर थी। गोपी समझ न सका कि आख़िर क्या बात है।

पिता ने उसे और पास बुलाकर कहा, "बेटा, मेरी और अपनी माँ की अवस्था देख रहे हो न?"

गोपी ने जैसे किसी आशंका से भरकर सिर हिला दिया।

"बेटा, अब हमारा कोई ठिकाना नहीं। आज किसी तरह कट गया, तो कल दूसरा दिन समझो। हमारे दिल में क्या-क्या अरमान थे, आज उन्हें याद करके हमारा कलेजा फट जाता है। खैर, भगवान् की जो इच्छा थी, पूरी हुई। लेकिन अब क्या तू चाहता है कि घर-गिरस्ती को इसी उजड़ी अवस्था में छोडक़र हम..." कहते-कहते उनका कण्ठ उमड़ती हुई पीड़ा के आवेग से रुद्ध हो गया।

माँ ने सिसकते हुए अपना मुँह आँचल से ढँककर फेर लिया।

गोपी के दुखी हृदय के जख्मों के टाँके जैसे किसी ने निर्दयतापूर्वक पट-पट तोड़ दिये। उसकी आत्मा दर्द के मारे कराह उठी। वह अपने को और सँभालने में असमर्थ होकर वहाँ से हटने लगा, तो पिता ने भरे गले से टूटे स्वर में कहा, "हमारे रहते ही अगर तू घर बसा लेता, तो कम-से-कम हम शान्ति से..."

गोपी आगे की बात न सुन सका। वह चौपाल में जाकर बिलख-बिलखकर रो पड़ा। ओह, उसे कोई क्यों नहीं समझ रहा है? किसी को अपनी बेटी के ब्याह की फिक्र है, तो किसी को उसके कुल के नाम-निशान की फिक्र है। माँ-बाप को उजड़ा घर बसाने की फिक्र है। लेकिन उसके चोट खाये दिल की क्यों किसी को फिक्र नहीं है?

यह सोच-सोचकर वह बार-बार झुँझलाया और उसने झुँझला-झुँझलाकर इसे बार-बार सोचा। आख़िर वह एक नतीजे पर पहुँच गया। उसे दृढ़ता के साथ समाज की ओर से, दुनिया की ओर से आँखें मूँदकर उत्तेजना की स्थिति में निश्चय किया कि वह घर बसाएगा, ज़रूर बसाएगा, लेकिन इस तरह बसाएगा, कि एक साथ ही उसके हृदय की चोटों पर भी मरहम लग लाए और उसकी विधवा भाभी के जलते जीवन पर भी शीतल जल के छींटें पड़ जाएँ।

दूसरे दिन शाम को जब माँ बाप के पैताने बैठकर उनके पैर दबा रही थी, गोपी पूजा-घर में जाकर धक-धक करता हृदय लिये भाभी के पीछे खड़ा हो गया। भाभी पूजा में तल्लीन थी। रामायण का पाठ चल रहा था..."एहि तन सती भेंट अब नाहीं..." भाभी इसी पंक्ति को बार-बार भरे गले से दुहरा रही थी। आँखों से टप-टप आँसू चू रहे थे।

गोपी का हृदय करुणा से भर गया। उसकी आँखों से भी आँसू की धारा बह चली।

आख़िर आँचल से आँखें सुखाकर, भाभी ने पूजा समाप्त कर ठाकुर के चरणों पर सिर नवाया। फिर चरणामृत पान करके उठी, तो सामने देवर को एक विचित्र अवस्था में खड़ा देखकर पहले तो उसकी आँखें फैल गयीं, फिर दूसरे क्षण पलकें झपकने लगीं। जेल से लौटने के बाद गोपी एक बार भी भाभी से आँखें न मिला सका था, एकान्त में मिलने की बात तो दूर रही। भाभी एक बार गोपी की ओर चकित हिरनी की तरह देखकर बगल से जाने लगी, तो गोपी ने प्राणों का सारा साहस बटोरकर अपने काँपते हुए हाथ से उसकी कलाई पकड़ ली। भाभी के मुँह से जैसे एक चीख़-सी निकल गयी, "बाबू!"

गोपी का चेहरा तमतमा उठा। आवेश में जलता हुआ वह काँपते स्वर में बोला, "भाभी, अब मुझसे यह-सब नहीं देखा जाता!"

भाभी अपने देवर को खूब जानती थी। उसकी एक ही बात, एक ही हरकत से वह उसके मर्म की सारी बातें जान गयी। उसकी आँखों की वीरानी और विवशता पर खुशी की एक किरण फूटी और अदृश्य हो गयी। वह रुदन भरे स्वर में बोली, "मेरे भाग्य में यही लिखा था, बाबू;" और रुदन के उमड़ते आवेश को रोकने के लिए उसने होंठों को दाँतों से भींच लिया।

"मैं भाग्य-वाग्य की बात तो नहीं जानता, भाभी! मैं तो सिर्फ अपने दुख और तुम्हारे दुख की बात जानता हूँ। क्या हम दोनों मिलकर यह दुखी जीवन साथ-साथ नहीं काट सकते? उजड़े हुए दो दिलों के मिलने पर क्या कोई नयी दुनिया नहीं बस सकती?" कहकर गोपी ने भरी आँखों से आग्रहपूर्ण निवेदन लाकर भाभी की ओर देखा।

भाभी ने एक ठण्डी साँस ली, दूसरे क्षण उसका चेहरा एक आशा और निराशा की द्वन्द्व भरी करुण मुस्कान से विचित्र सा हो गया। बोली, "ऐसा कभी नहीं हुआ...बाबू, ऐसा भी क्या...

"ऐसा कभी नहीं हुआ, इसीलिए आगे भी कभी नहीं होगा, यह बात मैं नहीं मानता। भाभी! मैं तो बस यही जानता हूँ और खूब सोच-समझकर देख भी लिया है कि इसके सिवा हमारे-तुम्हारे लिए कोई दूसरी राह नहीं है! मैं तुम्हारी इस अवस्था के रहते अपने जीवन में एक क्षण को भी चैन से न रह पाऊँगा!" गोपी ने सीधे दिल की बात कहकर आँखें नीची कर लीं।

उसके हृदय की तड़पती सच्चाई को भाभी समझ न पायी हो, यह बात नहीं। देवर के हार्दिक स्नेह से यह सदा दबी रही है। उसी का सहारा लेकर वह आज भी एक असम्भव को उसी तरह गले लगाये हुए है, जैसे बिच्छी अपने पेट में बच्चों को पालती है। बिच्छी के प्राण उसके बच्चे ले लेते हैं यही सोचकर वह उनसे अपना गला तो नहीं छुड़ा लेती! भाभी के प्राण भी ऐसे ही निकल जाएँगे, वह जानती है। फिर भी उस असम्भव को अपने मन से एक क्षण को भी वह अलग कहाँ कर पायी है? आज के इस अवसर को उसे मुद्दतों से इन्तज़ार था। उसने बहुत बार यह भी सोचा था कि ऐसे अवसर पर वह क्या कहेगी। लेकिन अब अवसर सचमुच उसके सामने आ गया, तो उसे लगा कि मन की बात उसके होंठों पर आयी नहीं कि देवर के सामने वह छोटी हो जाएगी। इस अवस्था में उसे लगा कि उस बात को बरबस दबाना ही पड़ेगा। उसकी विवशता देवर को भी मालूम है, उसे यह भी मालूम है कि भाभी अपने प्यारे देवर के हार्दिक स्नेह, सच्ची सहानुभूति का भार वहन कर सकने में आज कितनी असमर्थ है; वह यह भी जानता है कि उसके किए ही कुछ हो सकता है। भला भाभी के लिए वैसे देवर का निवेदन ठुकरा देना, अपने और उसके अब तक चले आये स्नेह-सूत्र में बँधे सम्बन्ध को तोड़ देना कैसे सम्भव है? इतना सब जानकर भी भाभी के मुँह से कुछ निकालकर उसे वह छोटा क्यों बनाना चाहता है।

असमंजस में पड़ी-सी भाभी बोली, "हमारा समाज, हमारी बिरादरी, हमारे माँ-बाप ऐसा कभी नहीं होने देंगे, बाबू!"

"भाभी, इस सबको तुम मेरे ऊपर छोड़ दो, मैं तो तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि जिस राह पर चलना मैंने तय कर लिया है, उस पर तुम भी मेरे साथ-साथ चल सकोगी न!" कहकर गोपी ने भाभी की कलाई अपने हाथ में दबाकर उसकी ओर ऐसे आँखों में कलेजा निकालकर देखा, जैसे उसके जवाब पर ही उसका जीवन-मरण निर्भर हो।

भाभी के होंठों में कम्पन हुआ। मन की बात होंठों पर आकर उबलने लगी। लेकिन फिर भी, लाख साहस बटोरने के बाद भी मुँह से कुछ निकल न सका। उसके हृदय का द्वन्द्व मुँह तक आयी बात को जैसे गट-से पी गया। हृदय की तूफानी धडक़न पर

काबू पाने के लिए उसने अपना तमतमाया, काँपता मुँह नीचे कर लिया। और गोपी को मानो उत्तर मिल गया। उसके जी में आया कि भाभी को खींचकर अपने कलेजे से लिपटा ले। उसके हाथ में एक हरकत भी हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण वह अपने को रोकने के लिए ही भाभी की कलाई छोड़कर, झपटकर बाहर हो गया।

भाभी हृदय का उमड़ता आवेग निकालने को ठाकुर के चरणों में गिरकर विह्वल होकर रो पड़ी-"भगवान्! भगवान्! क्या सच ही..."

गोपी माँ-बाप के सामने जाकर खड़ा हो गया। बाप ने उसकी ओर देखकर पूछा, "दाना मीसना अब कितना रह गया, बेटा?"

"आज ख़तम हो गया, बाबूजी।"

"अच्छा, तो जा, हाथ-मुँह धो ले। भाभी ने रोटी सेंक ली हो, तो गरम-गरम खा ले। दिन-भर का थका-हारा है।" फिर अपनी औरत की ओर देखकर कहा, "फसल घर आ जाती है, तो किसाऩ की साल-भर की मेहनत सुफल हो जाती है। काम से ज़रा फुरसत पा उस दिन वह आराम की एक साँस लेता है।"

"बाबूजी।"

बाप ने मुड़क़र फिर गोपी की ओर देखकर कहा, "क्या कहता है? कोई बात है?"

"हाँ।"

"तो कहो!"

"बाबूजी, अब मैं घर बसाऊँगा।"

"यह तो बड़ी खुशी की बात है, बेटा! हम तो तुम्हारी इसी बात का, जब से तुम आये, इन्तज़ार कर रहे थे। कर ही लो। तय करते कितनी देर लगेगी! कितने आ-आकर चले गये। अरे हाँ, मटरू इधर महीनों से नहीं आया। कह गया था, मैं ही गोपी का ब्याह कराऊँगा। भूल गया होगा। दाने मीसने से आजकल किस किसान को कहाँ किसी बात की फिक्र रह जाती है! खैर, अब सब ठीक हो जाएगा, बेटा! तुझे कोई चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं!" फिर अपनी औरत की ओर मुड़क़र खुशी से पागल हुए-से बोले, "खेत का धन कट-कुटकर जब घर आ जाता है तो किसान का ध्यान खेत से हटकर घर में आ जाता है! क्यों, गोपी की माँ?"

माँ खुशी में फूली हुई अपने आँचल से अपने लाडले के मुँह पर जमी धूल-गर्द को पोंछती हुई बोली, "सो तो है ही गोपी के बाबूजी! घर भरता है तो पेट भरता है, और जब पेट भरता है तो..." और वह जोर से खी-खी कर हँस पड़ी, तो बूढ़े भी हो-हो कर उठे।

"लेकिन बाबूजी..." सिर झुकाये, हाँथों को उलझाता गोपी बोला।

"तुम फिक्र न करो, बेटा! सब ठीक हो जाएगा, बेटा! मेरे कुल से सम्बन्ध करने का लोभ किसमें नहीं? अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। तू लायक बनकर रहेगा, तो सब बिगड़ी बन जाएगी। वही देखने को तो अभी तक मैं जिन्दा हूँ। क्यों, गोपी की माँ?"

"और नहीं तो क्या? मेरा लाल सलामत रहे, तो फिर घर खमखम भर जाएगा। हे भगवान!" और बूढ़ी ने दोनों हाथ माथे से लगा लिये।

"मगर, बाबूजी," सूखते गले के नीचे थूक उतारता गोपी बोला, "मैं...मैं ...मुझे...मुझे...अपना घर बसाने के लिए किसी दूसरी लडक़ी को नहीं लाना है। मैंने तय किया कि भाभी..."

"क्या?" क्रोध में काँपते पिता ऐसे चीख पड़े कि उनकी आँखें निकल आयीं। माँ जैसे सहसा जमकर पत्थर हो गयी। उसका मुँह और आँखें सीमा से अधिक फैल गयीं। पिता ने गरजकर कहा, "मेरे जीते-जी अगर तूने यह बात फिर मुँह से निकाली, तो...तो...तू सुन ले, वह मेरे घर की देवी हो सकती है, लेकिन बहू...बहू वह मानिक की ही रहेगी। तूने अगर...ओह, मानिक की माँ?" उनका क्रोध में उठा हुआ कमर से ऊपर का शरीर काँपता हुआ कटे हुए पेड़ की तरह धम से गिर पड़ा और वे दोनों ठेहुनों पर हाथ रखते ज़ोर से कराह उठे। माँ जलती हुई आँखों से गोपी की ओर देखती गुस्से से काँपती उनके ठेहुनों को सहलाने की व्यर्थ कोशिश करने लगी।

बूढ़े की कडक़ सुनकर कई आदमी लपक आये। भाभी दरवाज़े पर आकर होंठ चबाने लगी।

गोपी हाथों से सिर पकड़े वहाँ से हट गया।

दुनिया समझती है कि बेटा और विधवा बहू माँ-बाप की आँखों के तारे हैं। बूढ़ा कैसे दूसरों से कहता है, "मेरे घर की लक्ष्मी है! बेवा हुई तो क्या, वह मेरी जान के पीछे है! उसकी सेवाओं का बदला क्या इस जीवन में मैं चुका सकता हूँ? पिछले जनम की वह मेरी बेटी है, अगले जनम में मैं उसकी बेटी बनकर उसकी सेवा करूँगा, तभी ऋण से उऋण हो पाऊँगा?" और माँ? "इसे मैं अपनी आँखों की पुतरी की तरह रखूँगी! मेरे

लिए तो यह मेरा मानिक ही है? बड़ी बहू एक दिन घर की मालकिन बनेगी! उसे तुलसी की तरह सब अपने सिर पर रखेंगे!" लेकिन कोई भोले गोपी से तो पूछे कि वे उसके लिए क्या हैं? ओह, उनकी आँखों की लपटों ने क्यों नहीं उसे वहीं जलाकर भसम कर दिया, क्यों नहीं बढक़र भाभी को जला दिया, क्यों नहीं फैलकर सारे घर को जला दिया? सब झंझट ही साफ हो जाता। फिर बूढ़ा-बूढ़ी बैठकर मसान जगाते!

गोपी का सारा तन-मन फुँक रहा था। उसके जी में आता था कि अभी सबको नोच-नाचकर रख दे और भाभी का हाथ पकडक़र घर से निकल जाए। कई बार चौपाल से घर में जाने को उसके पैर बढ़े और पीछे हटे! कई बार उसने दाँत भींच-भींचकर कुछ सोचा, लेकिन इतनी हिम्मत उसमें कहाँ थी कि माँ-बाप की छ़ाती पर पैर रखकर वह चला जाए। उसने कब सोचा था कि आख़िर उसे ऐसा भी करना पड़ेगा? वह तो सोचता था कि माँ-बाप का अकेला लाडला जैसे ही मुँह खोलेगा...।

वह विवश क्रोध में पागल-सा हो बाहर निकल पड़ा। उसे भय लगा कि सचमुच वह कहीं कुछ कर न बैठे!

उसकी अब तक बँधी आशा टूट गयी थी। इतने दिनों अपने हृदय से लडक़र उसने उससे जो समझौता किया था, वह व्यर्थ सिद्घ हो गया। पिता की एक बात ने ही उसके अब तक के खड़े किये गये महल को ठोकर मारकर गिरा दिया। एक नयी राह पर चलकर अपनी मंजिल के करीब वह पहुँचा ही था कि उसकी टाँगें तोड़ दी गयीं। आज वह जितना दुखी था, उससे कहीं अधिक क्षुब्ध था। अपने माँ-बाप पर। चली आयी खोखली रीति, समाज के एक थोथे रिवाज, सड़ी-गली एक रूढ़ि, कुल की एक झूठी मर्यादा के दम्भी पुजारी माँ-बाप अपने खूनी जबड़ों में एक फूल-सी सुकुमार, गाय-सी निरीह, रोगी-सी दुर्बल, निहत्थी-सी अपनी रक्षा करने में बेबस, कैदी-सी गुलाम, सुबह के आख़िरी तारे-सी अकेली युवती को दबाकर चबा डालना चाहते हैं। ओह! इन्हीं आँखों से कैसे वह निर्दयता का यह क्रूर दृश्य देखता रहेगा?

वह बौराया-सा कटे हुए खेतों-खलिहानों में परेशान दिमाग और क्षुब्ध हृदय लिये बड़ी रात तक घूमता रहा। उसे इस वक़्त सिर्फ एक मटरू ही ऐसा आदमी दिखाई देता था, जिसकी गोद में सिर डालकर वह जरा शान्ति का अनुभव करता। शायद वही अब कुछ करे। भाभी की ओर से तो उसे तसल्ली मिल ही गयी। उसके जी में आया, अभी दौडक़र मटरू के पास पहुँच जाए, लेकिन घर की सोचकर कि जाने आज भाभी पर क्या बीते, वह वापस लौट पड़ा।

वह खेतों से घर की ओर चला। चारों ओर सन्नाटा छाया था, काली रात ने सब कुछ ढँक लिया था।

चोर की तरह वह घर की दालान से खटोला निकालने को घुसा तो माँ की कडक़ती हुई आवाज़ सुनकर चौखट पर ठिठक गया।

माँ चोट खायी बाघिन की तरह गरज रही थी, "कलमुँही! तुझे शर्म न आयी देवर पर डोरा डालते। मैं तो समझती थी कि सावित्री-सी सती है बहू। क्या-क्या पाखण्ड रचे थे, पूजा-पाठ, ध्यान भक्ति, सेवा-सुश्रुषा! मुझे क्या मालूम था कि इस पाखण्ड की आड़ में तू मेरी नाक काटने की तैयारी कर रही है! चुड़ैल! तुझे लाज न आयी यह सब पाप करते? यही-सब करना था, तो तू क्यों न निकल गयी किसी पापी के साथ? तू काला मुँह करती, मेरा बेटा तो बच जाता तेरे जाल से! कितने ही आये रिश्ता लेकर और लौट गये। हम कहें क्या बात है कि वह किसी के कान ही नहीं देता। हमें क्या मालूम था कि भीतर-ही-भीतर तू बेशर्मी का नाटक रच रही है। कुशल है कि बूढ़ा अपंग हो गया है, नहीं तो तुझे आज बोटी-बोटी काटकर फेंक देता! तू चखती मज़ा अपनी करनी का! जा कहीं डूबकर कुल-बोरिन! ..."

गोपी और ज़्यादा न सुन सका। उसका दिमाग फटने लगा। उसे लगा कि अगर वह एक क्षण भी वहाँ खड़ा रह गया, तो कुछ ऐसा भीषण काम कर डालेगा, जिसका फल अत्यन्त ही भयंकर होगा। वह लडख़ड़ाया हुआ-सा भागकर घर के पास कुएँ की जगत पर दोनों हाथ से फटता सिर दबाये पड़ गया। उसके हृदय में हाहाकार मचा था।

भाभी ने आज तक ऐसी बातें न सुनी थीं। आज जीवन के गुज़रे हुए दिन उसकी आँखों के सामने वैसे ही नाच उठे, जैसे किसी मरने वाले के सामने। माँ-बाप, भाई-बहन का लाड़, मानिक का प्यार, सास-ससुर, देवर का स्नेह। उधर, विधवा होने के बाद ज़रूर कुछ चिड़चिड़ी होकर वह सास से उलझी थी। लेकिन इस तरह की बात कोई कहे, इसका मौका उसने किसी को कभी न दिया था। आज भी उसकी कोई गलती न थी। फिर सास जो ऐसी बातें बिना कुछ जाने-बूझे, सोचे-समझे उसे सुनाने लगी, तो उसके मन की क्या हालत हुई, वह सहज ही समझा जा सकता है। उसका घायल हृदय हाहाकार कर उठा। इस अचानक बेकारण हमले से वह ऐसी सुन्न हो गयी कि न कुछ कह सकी, न रो सकी, न एक आह ही भर सकी। दिमाग भन्ना रहा था, चेतना पर असह्य पीड़ा का खामोश नशा-सा छा गया, अंग-अंग जैसे निर्जीव हो रहा था। जहाँ होश और बेहोशी एक-दूसरे से मिलते हैं, ऐसी स्थिति में वह बुत बनी बैठी रह गयी। सास बड़बड़ाती रही। लेकिन अब उसे जैसे कुछ सुनायी न दे रहा था। उसके सुन्न

दिल-दिमाग की गहराइयों में सास की वह एक ही बात गूँज रही थी, "जा कहीं डूब मर, कुलबोरिन! जा..."

कभी पहले भी मर जाने की बात उसके मन में उठी थी, लेकिन एक आशा, एक सहारे ने उसके हाथ थाम लिये थे। वह आशा असम्भव ही थी तो क्या, फिर भी आशा थी, लेकिन आज? आज वह भी टूट गयी। जिस तारे पर नज़र लगाये वह आज तक जीवित थी, वही टूटकर गिर पड़ा। अब, सिर्फ अन्धकार है, अन्धकार है, निविड़, कठोर, भयंकर!

बड़बड़ाते-ही-बड़बड़ाते सास खाट पर पड़ गयी और बड़बड़ाते-ही-बड़बड़ाते थककर सो गयी। उसे खाने-पीने, बूढ़े की दवा-दारू, बेटे की खोज-ख़बर, यहाँ तक कि घर का बाहरी दरवाजा बन्द करने की भी गुस्से के मारे सुधि न रही।

अँधेरी रात पल-पल गाढ़ी होती गयी। घर का सन्नाटा गहरा होता गया। वातावरण भाँय-भाँय करने लगा। निर्जनता को भी जैसे नींद आ गयी। साँसें भी जैसे थम गयी हों।

अन्धकार पूर्ण अतल में डूबी हुई भाभी की चेतना में एक हरकत हुई। नशे में बुत-सी वह उठ खड़ी हुई। कोई शब्द नहीं, कोई ख़याल नहीं। उसके बेहोश पैर उठे। यह घर के बाहर की सीढ़ी है, जिस पर भाभी ने इस घर में आने के बाद कभी पैर न रखा था। लेकिन आज वह नहीं है। आज एक लाश है, जो बाहर जा रही है। और उसे तो इस क्षण यह भी ज्ञान न था कि वह क्या कर रही है। एक बेहोशी की चेतना है, जो उसे लिये जा रही है।

यह कुएँ की जगत की सीढिया़ हैं। दो कदम और...और...फिर...

"कौन?" फैली आँखों से देखता अभी तक जगा पड़ा गोपी पुकार उठा।

बेहोशी को अचानक होश आ गया। काँपती भाभी कुँए की दाँती की ओर दौड़ी कि गोपी ने उसे पकड़ लिया। "कौन है? भाभी तुम?" भाभी बेहोश हो उसकी बाँहों में आ रही। यही होने वाला था, यही होने वाला था! गोपी की बुज़दिली का नतीता यही होने वाला था! अब? समय नहीं! जल्दी! जल्दी! सोचने का समय कहाँ, मूर्ख!

और गोपी भाभी को अपनी बाँहों में उठाये भाग चला। अन्धकार, कोई रास्ता नहीं। लेकिन गोपी भागा जा रहा है। रास्ता देखने-समझने का यह समय नहीं। इस वक़्त तो भाभी को उन चाण्डालों से कहीं दूर ले जाना है, वह बस यही जानता है, यही!

चौदह

पौ फटने के पहले ही गोपी लौटकर कुँए की जगत पर पड़ रहा। अभी वह अपने को स्थिर करने की कोशिश कर ही रहा था कि माँ के चीख़ने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी, "हाय राम! बड़ी बहू घर में नहीं है!" लेकिन वह आँखें मूँदें ऐसे पड़ा रहा, जैसे नींद में बेख़बर हो।

धीरे-धीरे मोहल्ले के औरत-मर्द उसके दरवाज़े पर जमा हो गये। गोपी को जगाया गया। वह एक हत्यारे की तरह चुप बना रहा। लोगों ने बहुत सोच-समझकर भीड़ हटायी और हिदायत की सब चुप रहें, किसी को कानो-कान ख़बर न हो; वरना बदनामी होगी सो तो होगी ही, ऊपर से लेने के देने भी पड़ न जाएँ।

लेकिन इस तरह की वारदातें छिपाये कहीं छिपती हैं? बहुतों को इस तरह की संगीन ख़बरें फैलाने में एक अजीब तरह का मज़ा मिलता है। सो, घड़ी-आध घड़ी बीतते दारोग़ा आ धमका।...

दारोग़ा चला गया। गोपी चौपाल में अकेला बैठा सोच में डूबा था। माँ की रुलाई की आवाज़ सुनकर उसका पारा चढ़ रहा था। उसकी समझ में न आता था कि वह क्यों रो रही है? उसी ने तो उसे डूब मरने के लिए कहा था। अब यह ढोंग क्यों दिखा रही है? उसके जी में आता था कि जाकर उसे खूब आड़े हाथों ले और कहे कि अब तो नाक बच गयी! खुशी मनाओ! अपने कुल की मर्यादा का ढोल पीटो! वहअपने बाप से भी झगडऩा चाहता था। अब तो इज्ज़त बढ़ गयी? कलेजा ठण्डा हुआ? हत्यारों! उस मासूम की हत्या का पाप ताज़िन्दगी तुम्हारे सिर पर रहेगा। तुम अपनी बिरादरी को हार बनाकर गले में पहने रहो, रीति-रिवाज की खूब माला जपो!

लेकिन रात की घटना उसके दिल-दिमाग पर इतनी और इस तरह छायी थी, कि वह उठ न सका। सोचने-विचारने पर उसे लगता था कि वह खुद भी माँ-बाप से किसी प्रकार कम अपराधी नहीं था। उसका भी उसमें उतना ही हाथ था, जितना उनका। अगर हिम्मत करके वह माँ-बाप का मुकाबिला कर सकता, सरेआम भाभी का हाथ पकड़ लेता, तो भाभी के लिए ऐसा करने की नौबत क्यों आती? यही ख़याल उसे बेतरह दबाये हुए था। उसकी जबान बन्द थी।

आज वही बात फिर उसके मन में बार-बार उठ रही थी कि सच ही उसके समाज की विधवा लकड़ी का वह कुन्दा है जिसमें उसके पति की चिता की आग एक बार जो लगा दी जाती है, वह जलती रहती है, तब तक जलती रहती है, जब तक वह जलकर राख न

हो जाए, और उसके राख हो जाने के पहले उसे बुझाने का किसी को अधिकार नहीं। क्या राख हो जाने के पहले उसने भाभी को बचा लेने की जो कोशिश की, वह उसकी अनाधिकार चेष्टा थी? क्या उसकी सच्ची सहानुभूतिपूर्ण कोशिशों का यही अन्त होना था? आख़िर इसमें बाकी ही क्या रह गया था। भाभी के राख जाने में कसर ही कितनी थी? यह तो संयोग ही था न, जो बच गयी, वरना, वरना...और वह फूट-फूटकर रो पड़ा। ओह! यह क्या होने वाला था! हे भगवान्! तेरा लाख-लाख शुक्र, जो...

और वे सवाल फिर-फिर उसके दिमाग में उठ पड़ते, ऐसा क्यों हुआ? क्यों, क्यों?

और उसके ही अन्तर की आवाज़ उसके जवाब में गूँजने लगती, "हाँ, तुम सच्चे थे, तुम्हारा दिल भी सच्चा था, तुमने कोशिश भी की ज़रूर! लेकिन उस कोशिश को सफलता की मंज़िल तक पहुँचाने के लिए जिस साहस की जरूरत थी, वह पूरा-पूरा तुममें न था। इस साहस के अभाव ने ही भाभी को राख हो जाने के लिए मजबूर कर दिया था। साहस विहीन इस तरह की कोशिशों का यही अन्त होता है। ये आग को और भडक़ा देती हैं। ये तत्क्षण जलाकर राख कर देती हैं। मूर्ख! अब भी समझ, अब भी सँभल! यह बच्चों का खेल नहीं, यह भावुकता के व्यर्थ के जोश के बस का रोग नहीं! यह आग में फाँदकर आग बुझाना है, यह जीवन पर खेलकर जीवन को बचाना है, यह युगों-युगों से लाखों विधवाओं का खून पीकर बलिष्ठ हुए रीति-रिवाज के भयंकर राक्षस से अकेले लडक़र उसे पछाडऩा है, यह बीहड़ जंगल से एक नयी राह निकालना है! कोई ठट्ठा नहीं, कोई खेल नहीं!"

और जीवन में कभी भी हार न मानने वाले गोपी को लगा कि जैसे उसके साहस और बल को यह दूसरी ललकार है, जिसके सामने अगर उसने सिर झुका दिया, तो उसकी भाभी जलकर राख हो जाएगी। पहली ललकार जोखू की थी और आज यह दूसरी है। और गोपी को महसूस हुआ कि आज फिर वही खून उसकी नसों में दौडऩे लगा है, जिसकी ताकत के सामने वह किसी को कुछ न समझता था।

कुएँ में काँटा डाला गया, ताल पोखर को छाना गया। और जब कुछ पता न चला, तो तरह-तरह की अफवाहें हवा में उड़ायी गयीं, तरह-तरह की कहानियाँ रची गयीं। औरतों ने भाभी में कितने ही कुलच्छन निकाल डाले, बूढ़ों ने ज़माने को कोस-कोस मारा। यारों ने चरचा चला-चला खूब मज़े लूटे। लेकिन किसी में इतनी हिम्मत न थी कि गोपी के सामने ज़बान खोलता। फिर अपनी चादर के छेद को छिपाकर दूसरे की चादर के छेद में पैर डालकर कहाँ तक फाड़ते? ढेला गिरने से पानी की सतह पर जो हलचल मचती है, वह कितनी देर ठहरती है?

दिन बीतते गये। दुनिया पूर्ववत् चलती रही। और एक रात जब गाँव में सोता पड़ गया था। गोपी के दरवाज़े पर एक भारी-भरकम गोजी धम से बज उठी।

बूढ़े ने, जिसकी नींद आज-कल पहले की बहू वाली सेवा-सुश्रुषा न पाकर हिरण हो गयी थी; यों ही मुँदी आँखें खोलकर टोका, "कौन?"

आगन्तुक धीरे से हँसा। फिर बूढ़े की ओर बढ़ता बोला, "जाग रहे हो, बाबूजी?"

"कौन? मटरू है क्या? अरे बेटा, मेरी नींद तो उसी दिन उड़ गयी, जिस दिन से बहू चली गयी। अब तो लाश ढो रहा हूँ। कौन उसके बराबर हमारी सेवा करेगी? बूढ़ी तो ज़रा देर में झल्लाकर भाग खड़ी होती है। अब तो भगवान् उठा लें, यही मनाता रहता हूँ। आओ बैठो। बहुत दिन पर आये! क्या-क्या हो गया, इसी बीच। सोचा था, अब दिन लौटेंगे, लेकिन करम में तो जाने अभी क्या-क्या भोगना बदा है।"

दीवार से गोजी टिकाकर, पैंताने बैठकर मटरू बोला, "सब ठीक हो जाएगा, बाबूजी। आप चिन्ता न करें! इस घर को बसाने के लिए ही तो मैं इतने दिनों रात-दिन एक किये रहा। सोचता था कि जब तक काम न बन जाए, कौन मुँह लेकर आपके यहाँ आऊँ। जबान दी थी, तो उसे पूरा किये बिना चैन कहाँ? मटरू की ज़िन्दगी इसी एक बात से तो पैमाल रहती है। अपने स्वभाव को क्या करूँ? गंगा मैया के पानी, मिट्टी और हवा के सिवा ज़िन्दगी का कोई सुख न जाना। हाँ, एक हक और न्याय के सामने किसी को मैंने कभी कुछ न समझा। कई बार मुँह की खाकर भी ज़मींदारों की ऐंठ नहीं जाती। मुँह का लगा हुआ आसानी से नहीं छूटता, बाबूजी! पुश्तों हराम का दीयर से बटोरा है। अब नहीं मिलता, तो दाँत किटकिटाते हैं। सुना है, कानूनगो को पड़ताल करने का हुक्म आया है। अभी तो चारों ओर पानी-ही-पानी है, वह काहे की पड़ताल करेगा? बात अगले साल पर गयी। तब तक हमें भी तैयारी करने का मौका मिल गया है। जान दे देंगे, बाबूजी, लेकिन ज़मींदारों का वहाँ पाँव न जमने देंगे। सालों यह लड़ाई चलेगी। गंगा मैया की किरिपा से हमारी जीत होगी। हक और न्याय हमारे साथ हैं। झूठ, फरेब, धाँधली, जोर-जुलुम की गाड़ी, बहुत दिनों तक नहीं चलती। अब मटरू अकेला नहीं, दीयर और तिरवाही के हज़ारों किसान उसके साथ हैं। अपनी प्यारी धरती पर जान देने वालों से उनकी धरती छीन लेने की ताकत किसमें है? ...इन्हीं झंझटों में फँसा रहा, बाबूजी, नहीं कभी का सब ठीक हो गया होता। इधर गंगा मैया भी फूल उठी हैं। पाँच दिन पहले ही तो अपनी झोंपड़ी उस पार ले गया हूँ। इस पार तो कुत्तों की तरह ज़मींदार मेरी महक सूँघते रहते हैं। अब तुम कहो, यहाँ का कोई समाचार बहुत दिनों से नहीं मिला? ..."

"क्या कहें बेटा, घर में एक करने-धरने वाली थी, वह भी..."

"वह तो सुन चुका हू, बाबूजी..."

"क्या बताऊँ, मटरू बेटा, ऐसी लायक वह थी कि उसकी याद आती है, तो कलेजा फटने लगता है। अब मैं नहीं जीऊँगा।" कहते कहते वह रो पड़े।

"बाबूजी, तुम इस तरह अपना जी हलका न करो। तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, बाबूजी, कि मैं गोपी को ऐसी बहू ला दूँगा, जो अकेले ही आपकी बड़ी बहू और छोटी बहू, दोनों की जगह भर देगी। आप चिन्ता न करें?"

"लेकिन गोपी तैयार हो तो, बेटा! वह तो हमसे बहुत नाराज़ है। बोलता भी नहीं। अब तुमसे क्या छिपाऊँ, वह अपनी भाभी के साथ ही घर बसाना चाहता था। यह भला कैसे हो सकता था? जाने उस दिन पगली बूढ़ी ने बहू को क्या कह डाला कि वह घर से निकल गयी। इधर यह हमसे नाराज़ हो घुलता जा रहा है! हमें क्या मालूम था, बेटा, कि इस तरह उसका दिल लगा था। मालूम होता तो हम काहे को कुछ कहते? माँ-बाप के लिए क्या बेटे से बढक़र बिरादरी है? वह भी दो-चार होते तो एक बात होती। यहाँ तो उसी के सहारे हमारी ज़िन्दगी है। बिरादरी वाले क्या हमें खाना दे देंगे? लेकिन हमें क्या मालूम था? अब कितना पछतावा हो रहा है! अरे, मेरी तो बेटी ही निकल गयी। उसके बराबर कौन मेरी सेवा करेगा? लेकिन अब किया ही क्या जा सकता है, बेटा! तुम उसे समझाओ, अब तो होश सँभाले।"

"समझाऊँगा, बाबूजी। मेरी बात वह नहीं टाल सकता। मुझे अपने मानिक भैया की तरह वह मानता है। तुम चिन्ता न करो, सब ठीक हो जाएगा। कहाँ पड़ा है वह।" उठते हुए मटरू ने कहा।

"अरे बेटा ज़रा देर और बैठ। मुझे यह तो बताया ही नहीं कि कहाँ..."

मटरू धीरे से हँसकर बोला, "अपने ही घर की लडक़ी है, बाबूजी! यों समझ लो कि मेरी छोटी साली ही है। पण्डित से जँचवा लिया है। गनना-बनना सब ठीक है। रूप-रंग में बिलकुल गोपी की भाभी ही की तरह है। ज़र्रा-बराबर भी फर्क नहीं। गुण में भी उसी की तरह। सेवा-टहल तो इतना करती है, बाबूजी, कि तुमसे क्या कहूँ? तुम देखना न! तुम तो समझोगे कि बड़ी बहू ही दूसरा रूप धारण करके आ गयी! तुम भी क्या समझोगे कि मैं कैसा पारखी हूँ। जब से गोपी की भाभी को देखा था, गोपी के लायक कोई लडक़ी ही नज़र पर न चढ़ती थी। कम कैसे आती घर में? यह तो संयोग कहो कि बिलकुल

वैसी ही लडक़ी घर में ही निकल आयी। वे लोग दुआह से उसकी शादी करने को तैयार ही न होते थे। सच भी है, वैसी रूपवती, गुणवती लडक़ी की शादी कोई दुआह से कैसे करे? वह तो मटरू की बात थी कि मान गये। मटरू की बात कोई नहीं टालता, बाबूजी। लेकिन, हाँ घर की हुई तो क्या? मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया है कि जो भी दर-दहेज वे माँगेंगे, देना पड़ेगा। सो, बाबूजी, किसी बात का लिहाज न करना। जो माँगना है, कह दो..."

"अरे, हमें उससे क्या मतलब है? तू गोपी से ही यह सब तय कर लेना हमें क्या, बेटा? जिसमें सब खुश, उसमें हम खुश। घर बस जाए, बस यही भगवान् से मिनती है। अच्छा, तो जा, सहन में गोपी होगा उससे बातें कर ले। और, बेटा, जितनी जल्दी हो, सब कर डाल। देर अब नहीं सही जाती! हे भगवान्..."

"सो तो सब तैयारी ही करके आया हूँ, बाबूजी," कहकर मटरू उठा और गोजी में बँधी गठरी खोलकर बूढ़े के हाथ में थमाता हुआ बोला, "यह मिठाई, धोती और पाँच सौ रुपये तिलक के हैं...

"हैं-हैं, अरे, इतनी जल्दी कैसे होगा यह सब? पर-पुरोहित, बर-बिरादरी..."

"सो तुम सब करते रहना, बाबूजी। मेरा तो जानते हो, रात का ही मेहमान हूँ! फिर गंगा मैया ऊफनी हुई हैं। पार-वार का मामला है। कौन बार-बार आने जाने की जोखिम उठाएगा? फिर तुम यह सब ले लोगे तो गोपी पर दबाव डालने की एक जगह भी निकल आएगी। मेरा काम कुछ आसान हो जाएगा। यों, काम तो तुम्हारा ही है। अब गोपी को भी टीका लगा दूँ। जय गंगा जी!" और वह उठ पड़ा।

गोपी सहन में खटोले पर पड़ा खर्राटे ले रहा था। मटरू ने पहुँचकर एक जोर की धौल जमायी और उसका हाथ पकड़ उठाकर बैठाता हुआ बोला, "क्यों बे, मैं तो तेरी शादी के चक्कर में इतनी रात को उफनती हुई नदी पार करके आया हूँ और तू यहाँ खर्राटे ले रहा है? आने दे बहू को, फिर देखूँगा कि कैसे खर्राटे लेता है?"

सकपकाया हुआ गोपी उठकर खड़ा होता धीरे से बोला, "चौपाल में चलो, मटरू भैया।"

"और यहाँ क्या हुआ है, बे? ...ओ, शर्म आती होगी! अबे, तूने तो, कुँआरों को भी मात कर दिया?"

गोपी उसका हाथ खींचकर अन्दर ले गया। उसके हाथ से गोजी लेकर दीवार से टिकाकर बोला, "मेरी..."

"अभी चुप रह, मुझे अपना काम कर लेने दे!" कहकर उसने बायीं हथेली पर दाहिने हाथ का अँगूठा रगड़ा और कुछ मन्त्र-सा बड़बड़ाता हुआ गोपी के माथे पर तिलक सा लगाने लगा, तो गोपी बोला, "इसे तूने कोई खेल समझ रखा है?"

मटरू सहसा हँसोड़ से गम्भीर हो उठा। बोला "खेल तू कहता है? बहादुरों के लिए मुश्किल-से-मुश्किल काम भी खेल है और बुज़दिलों के लिए आसान-से-आसान काम भी मुश्किल! तू यह बात किससे कह रहा है, कुछ ख़याल है? मटरू ने अपनी जिन्दगी में किसी काम को कभी भी मुश्किल न समझा। उसने मुश्किलों से हमेशा ही खेला है और खेल-खेल में ही सब कुछ सर कर लिया है। तू इस तरह की बात फिर जबान पर न लाना! दुनिया में मुझे किसी बात से चिढ़ है, तो वह बुज़दिली से है और जिस दिन मैंने समझ लिया कि तू बुज़दिल है, उसी दिन तुझे और तेरी भाभी काटकर गंगा मैया की भेंट चढ़ा दूँगा! समझ लूँगा कि एक भाई था, मर गया, एक बहन थी, न रही!" उसका गला भर्रा गया और उसने सिर झुका लिया।

गोपी उसकी गोद में सिर डालकर सिसक पड़ा। मटरू उसकी पीठ सहलाते हुए बोला, "पागल, मेरे रहते तुझे कौन-सी बात की मुश्किल लगती है? उठ, मेरी बात सुन! वक़्त ज़्यादा नहीं है। रात-ही-रात मुझे वापस जाना है!" और उसने गोपी को उठा उसके गालों को थपथपाते हुए कहा, "सिसवन घाट के सामने मेरी नाव लगी रहती है। वहाँ तू कहेगा, तो मेरी झोंपड़ी तक पहुँचा दिया जाएगा। मैं अपने आदमियों से कह रखँगा। तुझे कोई दिक्कत न होगी। मैंने बाबूजी को तिलक दे दिया। कल पीली धोती पहनना, बिरादरी में मिठाई बँटवा देना। और शादी की तिथि की ख़बर मेरे आदमियों को दिलवा देना। सब बाकायदे हो। दूल्हा बनकर मेरे यहाँ आना। बारात, बारात भरसक न लाना, लाना तो छोटी। गंगा मैया कोप में हैं। खैर, जैसा मुनासिब समझना, करना। मेरी बहन की शादी है। अपने को बेच देने में भी मुझे कोई उज्र न होगा। गंगा मैया फिर झोली भर देंगी। उसके दरबार में किसी चीज़ की कमी नहीं। समझा? मन में कोई वैसी बात न लाना। यह न भूलना कि तू मटरू का भाई है। ऐसा करना कि मटरू की इज्ज़त बढ़े। मटरू की इज्ज़त बहादुर ही बढ़ा सकता है। अच्छा, तो ख़याल रखना मेरी बातों का! सिसवन घाट! अब चलूँ?"

"मेरी भाभी कैसी है?" प्यार से गद्‌गद गोपी बोल पड़ा।

मटरू हँसा! बोला, "अबे अब भी वह तेरी भाभी ही है? दुलहन क्यों नहीं कहता? अच्छी है, बिल्कुल अच्छी है! गंगा मैया की हवा जहाँ तन में लगी कि तीनों ताप मिट जाते हैं।

वह तो अब ऐसी हरी हो गयी है, कि देखो तो जिया लहराय उठे। इस बीच कभी मौका मिले, तो आ जाना।" कहकर उसने गोपी का माथा चूम लिया और उठ खड़ा हुआ।

गोपी ने उसके पाँव पकड़ लिये। मटरू बोला, "हाँ, अभी से सीख ले, कि बड़े साले का आदर कैसे किया जाता है!"

"भैया!" गोपी ने शर्माकर सिर झुका लिया। मटरू ने उसे उठाकर अंक में भर लिया।

पन्द्रह

मुँह-अँधेरे ही बिलरा सानी-पानी करके आया तो, बूढ़े ने उसे बुलाकर कहा, "दौड़ा जाकर पुरोहितजी को बुला ला। कहना, साथ ही चलें, देर न करें।"

"क्यों मालिक, कोई मेहमान आये हैं का? छोटे मालिक का बियाह..."

"हाँ, हाँ रे, सब ठीक हो गया तू जल्दी बुला तो ला!"

बिलरा चला, तो उसके पाँवों में वह फुरती न थी, जो ऐसी खुशी के मौके पर हुआ करती है। छोटी मालकिन जिस दिन लापता हुई थीं, उसे बहुत दुख हुआ था। गोपी के आ जाने के बाद उसे छोटी मालकिन को देखने का मौका न मिला था। गोपी ही भूसा वगैरा निकालता था। उसके जी में कितनी बार आया था कि छोटे मालिक से वह अपने मन की बात कहे। कई बार अकेले में बात उसके मुँह में भी आयी थी, और गोपी ने उसकी कुछ कहने की मंशा समझकर पूछा भी था। लेकिन वह टाल गया था, उसे हिम्मत न पड़ी थी। छोटी मालकिन औरत थी, उससे कह देना आसान था। लेकिन यह बात गोपी के साथ न थी। कहीं गुस्सा होकर एकाध थप्पड़ जमा दिया तो? क्षत्री का गुस्सा क्या होता है, इससे उसका कितनी ही बार पाला पड़ा था। आख़िर जब छोटी मालिकिन के भाग जाने की बात उसे मालूम हुई थी, तो उसके मुँह से यही निकला था, "च...च् कैसे ज़ालिम हैं ये लोग! आख़िर बेचारी को भगाकर ही दम लिया!"

उसे उस मासूम छोटी मालिकिन की याद बहुत आती थी। बेचारी जाने कहाँ, कैसे होगी। कौन जाने, कहीं इनार-पोखर ही पकड़ लिया हो। उसकी यह सम्वेदना एक भोले-भाले दिलवाले की थी। आख़िर छोटी मालिकिन से उसका नाता ही क्या था? फिर भी उसके लिए जितना सच्चा दुख उसे हुआ था, शायद ही किसी को हुआ हो।

फिर कितनी जल्दी ये लोग उसे भूल गये! जैसे कोई बात न हुई हो। कितने दिन हुए अभी उसे गये? और यहाँ दन से ब्याह ठन गया! खुशियाँ मनायी जाएँगी। बाजे बजेंगे-

कितनी स्वार्थी है यह दुनिया! अपने सुख के आगे दूसरे के दुख की यहाँ किसे परवाह है?

बिलरा जब पुरोहित को साथ लिये लौटा तो दरवाज़े पर हंगामा मचा था। बुलावे पर बिरादरी के लोग इकट्ठे तो हुए थे, लेकिन बिना सब कुछ जाने-समझे वे शामिल होने से नकर रहे थे। कहाँ की लडक़ी है, उसके माँ-बाप का खून कैसा है, हड्डी कैसी है? वह रात को बरैछे का सामान देकर क्यों चला गया? क्यों नहीं रूका? इस तरह कहीं किसी का तिलक चढ़ता है?

गोपी एक ओर चुप खड़ा था। बूढ़े ही दीवार के सहारे बैठे उनसे बातें कर रहे थे। पण्डित जी को उन्होंने देखा, तो बुलाकर पास पड़ी चारपाई पर बैठाकर उन्हीं से कहा, "पण्डितजी, क्या मैं अन्धा हूँ? अपने खून-खानदान की फिक्र मुझे नहीं है? आज ये मुझे याद दिलाने आये हैं। मौके की बात है। मटरू सिंह न रुक सका। लडक़ी उसकी साली है। कई बार कह चुका, समझा चुका, मिन्नत कर चुका, लेकिन इन लोगों की ऐंठ ही नहीं जाती। अपाहिज होकर पड़ा हूँ, तो ये रोब जमाना चाहते हैं। आज ये भूल गये हम कौन हैं?"

"बिरादरी के मामलों में सब बराबर हैं! आँख से देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाएगी! पण्डितजी, आप ही कहिए, शादी है कि कोई ठट्ठा?" एक बोला।

पण्डितजी जानते थे कि किधर का पक्ष लेना इस अवसर पर लाभदायक है। उन्होंने खाँसकर, गम्भीर होकर कहा, "आपका कहा ठीक है। लेकिन भाई, हर मौके के चलाव का विधान भी भगवान् ने बनाया है। आप लोग तो जानते हैं कि मौके पर अगर वर बीमार पड़ जाय, बारात के साथ न जा सके, तो लोटे के साथ भी लडक़ी का विवाह सम्पन्न करा दिया जाता है। मौके का चलाव तो निकालना ही पड़ता है। किसी कारण मटरू सिंह न रुक सके, तो क्या इसीलिए यह मौका निकल जाने दिया जाएगा? नहीं, ऐसी बात तो रीति के विरुद्घ होगी। मेरी राय तो यही है। पंचों की अब जो मर्जी हो।"

बिरादरी वालों में कानाफूसी शुरू हुई। एक बूढ़ा बोला, "पण्डितजी आपने कही जो मौके की बात, वह ठीक है। लेकिन यह मौका तो कुछ वैसा नहीं। यह टाला जा सकता है। लगन तो कहीं फागुन में ही पड़ेगा। चार-पाँच महीने अभी हैं।"

"कैसे टाला जा सकता है? यह धोती, मिठाई रुपया क्या लौटा दूँ।" बूढ़े गरम हो उठे।

"कई बार ऐसा भी हुआ है।" एक दूसरा बोल पड़ा।

"और मैंने उसे जो जबान दी है?" बूढ़े चमक उठे।

"ऐसी कोई हरिश्चन्द्र की ज़बान नहीं है!" एक तीसरे ने ताना दिया।

बूढ़े के लिए अब सहना मुश्किल हो गया। वे काँप उठे और गरजकर बोले, "यह बात किसने मुँह से निकाली है। ज़रा फिर से तो कहे! असली राजपूत बाप का बेटा हुआ, तो उसकी ज़बान न खींच लूँ, तो कहना? अबे गोपिया! तू खड़ा-खड़ा मेरा अपमान देख रहा? ज़रा बता तो उसे कि तेरे बाप को झूठा कहने का नतीजा क्या होता है!"

बिरादरी में एक क्षण सन्नाटा छा गया। फिर एक कोलाहल-सा मच गया। "यह जबान खींचने वाले कौन होते हैं? पद आने पर बात कही ही जाएगी। यह सारी बिरादरी का अपमान है! उठो! उठो! ...चलो! कोई गाली सुनने यहाँ नहीं आया। टाट पर बैठने वाला हर आदमी बराबर होता है...इनकी क्या मजाल है? उठो! चलो!"...

पण्डितजी "हाँ-हाँ" करते ही रह गये। लेकिन धोती झाड़-झाडक़र, सब-के-सब उठकर बौखलाये हुए, आँखें दिखाते वहाँ से चले ही गये। अब तक भरी-भरी, दरवाज़े पर खड़ी बूढ़ी को भी जैसे अब गुबार निकालने का मौका मिल गया। हाथ चमका-चमकाकर वह बोली, "जाओ-जाओ! तुम्हारे बिना हमारे बेटा की शादी नहीं रुक जाएगी! पण्डितजी, पूजा की तैयारी कीजिए। इनके आँखें दिखाने से क्या होता है? होगा कोई घूरा-कतवार इनकी परवाह करने वाला! यह मानिक के बाप का घराना है; जो अकेले ही हमेशा सौ पर भारी रहा है! क्या समझ रखा है इन्होंने?"

"सच कहती हो, जजमानिन, यह तो सरासर इनका अन्याय है। पुरोहित की बात भी इन्होंने न मानी। इससे आपका क्या बिगड़ जाएगा? कुछ खर्च ही बच जाएगा। जिसका कोई नहीं, उसका भगवान् है, किसी के बिना कहीं किसी का काम अटका है!" कहकर पण्डितजी ने तैयारी शुरू कर दी।

इस तमाशे से सबसे ज़्यादा खुशी बिलरा को हुई। इन्हीं कम्बख्त बिरादरी वालों के डर से तो छोटी मालिकिन की वह हालत हुई। इस बिरादरी का डर न होता, तो जितनी बेवाओं की ज़िन्दगी तबाह हुई, सब बच जातीं और ठिकाना पा जातीं! यह खुशी बिल्कुल एक प्रतिद्वन्द्वी की जीत की थी। उसे ऐसा लगा कि यह उसी की जीत हुई!

पण्डितजी को खिला-पिलाकर, विदाकर गोपी पीली धोती पहने हुए चौपाल में बैठा सोच रहा था कि चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। बिल्ली के भाग से छींका ही टूट गया। रास्ते का एक बड़ा पहाड़ा आप ही हट गया...।

तभी बिलरा आकर उसके सामने बैठ गया।

गोपी ने उसकी ओर देखकर कहा, "बहुत खुश हो? क्या बात है?"

"मालिक, तुम्हारी बिरादरी वालों को भागते देखकर आज मुझे बहुत खुशी हुई!" हाथों को मलते हुए बिलरा बोला।

"इसमें खुशी की क्या बात है!" गोपी यों ही बोला।

"वाह मालिक! इसमें कोई खुशी की बात ही नहीं है? इन्हीं के डर से तो छोटी मालिकिन निकल गयीं। इनका डर न होता, तो काहे को वह घर छोड़तीं?" उदास होकर बिलरा बोला।

"हाँ, यह तू ठीक ही कहता है।" कुछ खोया-सा गोपी बोला।

"तुम्हें भी बिरादरीवालों का डर था मालिक?"

"हाँ।"

"लेकिन आज तो उनसे तुमने अपना सब नाता तोड़ लिया। पहले ही ऐसा कर लेते, मालिक, तो छोटी मालिकिन को घर क्यों छोडऩा पड़ता? पहले ऐसा क्यों न किया, मालिक?" भरे गले से बिलरा बड़े ही दर्दनाक स्वर में बोला।

गोपी उसके इस सवाल से घबरा गया। उसे क्या मालूम था कि यह नीच, गँवार भी ऐसी समझ की बात कर सकता है! वह बिल्कुल अचकचाया-सा उसका मुँह देखने लगा।

बिलरा ही बोला, "जाने कहाँ किस हालत में होंगी। उनका बड़ा मोह लगता है, मालिक! ऐसी बाछी की तरह वह थीं कि क्या बताऊँ! उनकी याद आती है, तो आँखों से लोर टपकने लगता है!" और वह रो पड़ा।

गद्गद होकर गोपी बोला, "भगवान् तेरे-जैसा दिल सबको दे, तेरे जैसा मोह सबको दे! तू दुख न कर, भगवान् सब अच्छा ही करते हैं। तू चुप रह।"

"मालिक।" सिसकता हुआ बिलरा बोला, "जब छोटी मालिकिन को देखता था, मन में उठता था कि तुम्हारे साथ उनकी कैसी अच्छी जोड़ी होती! मालिक, बिरादरीवालों का डर न होता, तो तुम उनके साथ ब्याह कर लेते न?"

गोपी का दिल हिल गया। वह विह्वल-सा होकर, बिलरा का हाथ पकडक़र उसकी आँखें पोंछते हुए बोला, "तू बड़ा अच्छा आदमी है, बिलरा! जा, सुबह से तू घर नहीं गया। तेरी औरत खोज रही होगी। माई से खयका माँग ले।"

'

गंगा मैया भाग 5 - ganga Maiya Part 5

1. गंगा मैया भाग 1
2. गंगा मैया भाग 2
3. गंगा मैया भाग 3
4. गंगा मैया भाग 4
5. गंगा मैया भाग 5
6. गंगा मैया भाग 6